

द प्रिंटर्स (मैसूर) प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

पोथन जोसेफ

(पी. बी. गजेन्द्रगडकर, के. एन. वांचू और के. सी. दास गुसा, जे. जे.)

मध्यस्थता समझौता:-कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाने की अदालत की शक्ति-निचली अदालत द्वारा अपील में पुष्टि की गई कार्यवाही पर रोक लगाने से इनकार करने का आदेश-सर्वोच्च न्यायालय, यदि और कब मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (1940 का 10), भारत के संविधान की धारा 34, अनुच्छेद 136 के तहत अदालतों द्वारा विवेकाधिकार के समवर्ती प्रयोग में हस्तक्षेप कर सकता है।

प्रत्यर्थी अपीलार्थी द्वारा स्वामित्व और प्रकाशित डेक्कन हेराल्ड का संपादक था, और पक्षों द्वारा निष्पादित दो अनुबंधों में एक मध्यस्थता खंड था कि यदि अनुबंध की व्याख्या या आवेदन में पक्षों के बीच कोई अंतर उत्पन्न होता है तो उसे मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया जाएगा और पुरस्कार पक्षों के बीच बाध्यकारी होगा और उसके मासिक वेतन के अलावा, प्रत्यर्थी को लाभ के 10 प्रतिशत के भुगतान के लिए भी प्रावधान किया जाएगा। अपीलार्थी द्वारा अपनी सेवाओं की समाप्ति पर, प्रत्यर्थी खातों और उसके देय लाभ के भुगतान के लिए एक मुकदमा लाया। अपीलार्थी ने एक आवेदन द्वारा अनुरोध किया कि मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 34 के तहत मुकदमे पर रोक लगाई जानी चाहिए और पक्षकारों के बीच समझौते के अनुसार मध्यस्थता के लिए संदर्भित विवाद। विचारण न्यायाधीश ने अपीलार्थी के पक्ष में अपने विवेक का प्रयोग करने से इनकार कर दिया और मुकदमे पर रोक लगाने से इनकार कर दिया। अपील

पर उच्च न्यायालय ने निचली अदालत के फैसले की पुष्टि की। अपीलार्थी संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय में विशेष अनुमति के लिए आया था।

अभिनिर्धारित किया गया कि मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 34 द्वारा न्यायालय को प्रदत्त शक्ति विवेकाधीन है और भले ही उसमें निर्दिष्ट शर्तें पूरी की गई हों, कोई भी पक्ष इसके तहत अधिकार के मामले के रूप में न्यायालय में स्थापित कानूनी कार्यवाही पर रोक का दावा नहीं कर सकता है। लेकिन न्यायालय में निहित विवेकाधिकार एक न्यायिक विवेकाधिकार है और प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इसका उपयोग किया जाना चाहिए। इसलिए, इसके प्रयोग के लिए कोई भी लचीले नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं और अदालत को सामान्य ज्ञान और न्याय के अनुसार कार्य करना होगा।

गार्डनर बनाम जे, (1885) अध्याय 29 डी. 50, संदर्भित।

जहां निचली अदालत द्वारा धारा के तहत विवेकाधिकार का उचित और विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया गया है, वहां अपीलीय अदालत केवल इस आधार पर विवेकाधिकार के इस तरह के प्रयोग में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा कि अगर उसने मामले पर विचार किया होता तो उसने इसके विपरीत निर्णय लिया होता। लेकिन अगर अपीलीय अदालत को यह प्रतीत होता है कि निचली अदालत ने अपने विवेकाधिकार का अनुचित या मनमौजी तरीके से प्रयोग किया है या प्रासंगिक तथ्यों की अनदेखी की है या मामले में निष्पक्ष रूप से संपर्क किया है, तो हस्तक्षेप करना उसका कर्तव्य होगा।

चार्ल्स ओसेनटन एंड कंपनी बनाम झानाटन, (1942) ए. सी. 130, संदर्भित।

"अनुबंध की व्याख्या और अनुप्रयोग" शब्द, जो अक्सर मध्यस्थता खंडों में उपयोग किए जाते हैं, क्योंकि वे विचाराधीन अनुबंधों में रहे हैं, न केवल अनुबंध की प्रासंगिक शर्तों के निर्माण से संबंधित विवादों को शामिल करते हैं, बल्कि उनके प्रभाव को भी शामिल करते हैं और जब तक कि संदर्भ एक विपरीत निर्माण को मजबूर नहीं करता है, अनुबंध के कामकाज से संबंधित विवाद ऐसे खंड के भीतर आता है।

लेकिन उच्चतम न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत निम्न न्यायालयों के विवेकाधिकार के अधिनियम की धारा 34 के समवर्ती प्रयोग के साथ हस्तक्षेप नहीं करेगा। इससे पहले कि वह न्यायसंगत रूप से ऐसा कर सके, अपीलार्थी को न्यायालय को, नीचे दिए गए न्यायालयों द्वारा निर्दिष्ट प्रासंगिक तथ्यों पर, संतुष्ट करना चाहिए कि उन्होंने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग स्पष्ट रूप से अनुचित या विकृत तरीके से किया जो न्याय के उद्देश्यों को विफल करने की संभावना थी।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार:- सिविल अपील सं. 107/1960

मैसूर उच्च न्यायालय, बेंगलूर 1959 की अपील सं. 68 के 21 सितंबर, 1959 के फैसले और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील।

अपीलार्थी के लिए पुरुषोत्तम त्रिकमदास, एस. एन. एंडले, जे. बी. दादाचंजी, रामेश्वर नाथ और पी. एल. वोहरा।

प्रतिवादी के लिए के. आर. कारंत और नौनीत लाल।

27 अप्रैल 1960

न्यायालय का निर्णय गजेंद्रगडकर, जे. दवारा दिया गया।

प्रतिवादी, पोथन जोसेफ, जो अपीलार्थी द्वारा स्वामित्व और प्रकाशित डेक्कन हेराल्ड के संपादक के रूप में काम कर रहे थे। बेंगलूर में द प्रिंटर्स (मैसूर) प्राइवेट लिमिटेड ने अपीलार्थी के खिलाफ क्रमशः 1 अप्रैल, 1948 और 20 फरवरी, 1951 को

पक्षों के बीच निष्पादित दो अनुबंधों के खिलाफ मुकदमा दायर किया है और 1 अप्रैल, 1948 से 31 मार्च, 1958 तक डेक्कन हेराल्ड समाचार पत्र के कामकाज के साथ-साथ उक्त अनुबंधों के खंड 2 (डी) और 1 (डी) के प्रावधानों के तहत अपीलार्थी से उसके देय राशि के भुगतान का दावा किया है। प्रत्यर्थी की सेवाओं को अपीलार्थी द्वारा 28 सितंबर, 1957 के अपने पत्र द्वारा समाप्त कर दिया गया था, जिसमें प्रत्यर्थी को बताया गया था कि समाप्ति 31 मार्च, 1958 से प्रभावी होगी। हालाँकि, अपीलार्थी द्वारा 17 मार्च, 1958 को प्रत्यर्थी को लिखे गए एक बाद के पत्र द्वारा, प्रत्यर्थी को बताया गया कि उनकी सेवाओं को तत्काल प्रभाव से समाप्त कर दिया गया है और उन्हें अपने उत्तराधिकारी श्री टी. एस. रामचंद्र राव को कार्यभार सौंपने के लिए कहा गया है। इसके बाद 14 जुलाई, 1958 को प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के खिलाफ वर्तमान मुकदमा दायर किया।

अपीलार्थी ने तर्क दिया कि जिन दो अनुबंधों पर प्रतिवादी का दावा आधारित था, वे एक मध्यस्थता समझौते के अधीन थे, और इसलिए यह प्रतिवादी के लिए अपीलार्थी के खिलाफ वर्तमान मुकदमा दायर करने के लिए खुला नहीं था। इसलिए, अपीलार्थी ने धारा 34 के तहत न्यायालय से अनुरोध किया। भारतीय मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (जिसे इसके बाद अधिनियम कहा जाता है), प्रत्यर्थी द्वारा शुरू की गई कार्यवाही पर रोक लगाने और पक्षों के बीच मध्यस्थता समझौते के अनुसार विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए।

हालाँकि, अपीलार्थी के आवेदन को सुनने वाले विद्वत विचारण न्यायाधीश ने इसके खिलाफ अपने विवेक का प्रयोग किया और प्रतिवादी के मुकदमे में कार्यवाही पर रोक लगाने से इनकार कर दिया। इसके बाद अपीलार्थी ने मैसूर उच्च न्यायालय में अपील की, लेकिन उसकी अपील विफल रही और उच्च न्यायालय ने विभिन्न कारणों से निचली अदालत द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने सोचा कि

विद्वत विचारण न्यायाधीश, अपीलार्थी के आवेदन पर विचार करते हुए "जितना उसे करना चाहिए था, उससे कहीं अधिक आगे बढ़ गया था, और इसलिए यह वांछनीय था कि मामले की सुनवाई किसी अन्य न्यायाधीश द्वारा की जानी चाहिए।"

प्रत्यर्थी ने आपत्ति नहीं जताई, इसलिए उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि मुकदमे को अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश, बेंगलोर की फाइल में स्थानांतरित किया जा सकता है। इसके बाद अपीलार्थी ने प्रमाण पत्र के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया। हालाँकि, उनके आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि अपील के तहत निर्णय को अनुच्छेद के तहत निर्णय, डिक्री या अंतिम आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है। संविधान की धारा 133 (1); उस दृष्टिकोण पर यह निर्णय लेना अनावश्यक समझा गया कि क्या गुण-दोष के आधार पर मामला इस न्यायालय में अपील करने के लिए उपयुक्त था। तब अपीलार्थी ने इस न्यायालय से विशेष अनुमति के लिए आवेदन किया और प्राप्त किया। इस प्रकार यह अपील हमारे समक्ष आई है और हमारे निर्णय के लिए जो महत्वपूर्ण बिंदु उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या निचली अदालतें उनके बीच मध्यस्थता समझौते को देखते हुए अपीलार्थी के खिलाफ प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमे पर रोक लगाने से इनकार करने में गलती कर रही थीं।

इससे पहले कि हम इस अपील में पक्षों द्वारा उठाई गई दलीलों के गुण-दोष पर विचार करें, वर्तमान मुकदमेबाजी की ओर ले जाने वाले प्रासंगिक तथ्यों को संक्षेप में निर्धारित करना आवश्यक है। अपीलार्थी एक मुद्रण कंपनी है और यह बेंगलोर में अंग्रेजी में डेक्कन हेराल्ड और कन्नड़ में प्रजवानी का स्वामित्व और प्रकाशन करती है। 1 अप्रैल, 1948 के एक अनुबंध द्वारा, अपीलार्थी ने उक्त अनुबंध में निर्दिष्ट नियमों और शर्तों पर प्रतिवादी को डेक्कन हेराल्ड के संपादक के रूप में पांच साल की अवधि के लिए नियुक्त किया। जैसा कि उक्त अनुबंध के खंड 5 द्वारा प्रदान किया गया था, 20 फरवरी, 1953 को पक्षों के बीच किए गए एक बाद के अनुबंध द्वारा प्रतिवादी के रोजगार

की अवधि को और पांच साल के लिए बढ़ा दिया गया था। जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि प्रत्यर्थी की सेवाओं को 17 मार्च, 1958 को अचानक समाप्त कर दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि 16 अक्टूबर, 1957 के अपने पत्र से प्रत्यर्थी ने कार्यशील पत्रकार अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपीलार्थी के खिलाफ कुछ दावे किए थे। इसके अलावा, उन्होंने डेक्कन हेराल्ड द्वारा 1948 से दो संबंधित अनुबंधों के तहत अपनी सेवा की समाप्ति तक किए गए मुनाफे का 1/10 वां हिस्से की मांग की। अपीलार्थी द्वारा इस दावे का खंडन किया गया था। इसके बाद पक्षों के बीच पत्राचार हुआ लेकिन चूंकि उनके बीच कोई सामान्य आधार नहीं था, इसलिए प्रतिवादी ने वर्तमान मुकदमा दायर किया। उनका मामला यह है कि दो अनुबंध उन्हें अपने रोजगार की अवधि के दौरान डेक्कन हेराल्ड द्वारा किए गए लाभ के 10वें हिस्से का दावा करने का अधिकार देते हैं, और इसलिए वह उक्त लाभ और उनमें अपने देय हिस्से का दावा करता है।

विद्वत विचारण न्यायाधीश ने पाया कि उनके समक्ष पक्षों द्वारा उठाई गई संबंधित दलीलों से पता चलता है कि उनके बीच ऐसा कोई विवाद नहीं था जो मध्यस्थता समझौते को आकर्षित कर सके। उन्होंने यह भी माना कि पक्षों द्वारा श्री बेहरार डॉक्टर की मध्यस्थता के माध्यम से अपने मतभेदों को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने का प्रयास किया गया था, लेकिन उक्त प्रयास विफल रहा क्योंकि अपीलकर्ता इसके बारे में गंभीर नहीं था और केवल "वादी के कदमों को आगे बढ़ाने, हराने और देरी करने" की कोशिश कर रहा था। विद्वत विचारण न्यायाधीश के अनुसार वर्तमान वाद में सीमा की याचिका पर विचार किया जाना चाहिए और यह वांछनीय था कि उक्त याचिका की सुनवाई मध्यस्थों के बजाय एक सक्षम अदालत द्वारा की जानी चाहिए। हालाँकि, वह प्रत्यर्थी के इस तर्क से प्रभावित नहीं थे कि अपीलार्थी द्वारा उनके चरित्र पर महाभियोग चलाया गया था और इसलिए उन्हें मध्यस्थों के बजाय अदालत के

समक्ष मुकदमे में अपने चरित्र को सही साबित करने की अनुमति दी जानी चाहिए। वाद पर रोक लगाने के लिए अपीलार्थी के दावे को खारिज करते हुए विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि यदि डेक्कन हेराल्ड के खातों को अलग से नहीं रखा गया था तो यह एक योग्य लेखाकार के लिए अपीलार्थी की विभिन्न गतिविधियों के बीच खर्च और पूंजीगत व्यय आवंटित करने के लिए सक्षम होगा और फिर निर्णय लेने के लिए मध्यस्थों के लिए बहुत कम बचा होगा। उन्हें इस बात में कोई संदेह नहीं था कि जिस अनुबंध के द्वारा प्रतिवादी डेक्कन हेराल्ड के लाभ में 1/10 वें हिस्से का दावा करने का हकदार था, वह अनिवार्य रूप से यह मानता था कि डेक्कन हेराल्ड के खातों को अलग से बनाए रखा जाएगा। इन बातों पर विचार करते हुए निचली अदालत के न्यायाधीश ने मुकदमे पर रोक लगाने से इनकार कर दिया।

जब मामला अपील में गया तो उच्च न्यायालय ने माना कि पक्षों के बीच विवाद मध्यस्थता समझौते के अंतर्गत नहीं आता है। उच्च न्यायालय ने निचली अदालत द्वारा तय किए गए अन्य बिंदुओं पर विचार किया: इसने अभिनिर्धारित किया कि श्री बेहराम डॉक्टर को पक्षों के बीच मध्यस्थ के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था और उनके समक्ष की कार्यवाही से केवल यह पता चलता है कि पक्ष मध्यस्थता की संभावना तलाश रहे थे। इसने देखा कि अपीलकर्ता कंपनी एक बड़ी चिंता थी और उसने प्रत्यर्थी की इस आशंका का उल्लेख किया कि वह प्रत्यर्थी के दावे को चकमा देने की स्थिति में थी। हालाँकि, उच्च न्यायालय इन आशंकाओं से प्रभावित था, और वह निचली अदालत में अपीलार्थी के आचरण में दोष खोजने के लिए इच्छुक नहीं था। यह भी संतुष्ट नहीं था कि मुकदमे में उत्पन्न होने वाली सीमा का सवाल और साथ ही अनुबंधों की व्याख्या का सवाल मध्यस्थता द्वारा ठीक से नहीं चलाया जा सका। इसने माना कि जब श्री बेहराम डॉक्टर के समक्ष मामले पर चर्चा की गई थी और जब यह वर्तमान वाद के रूप में अदालत में पहुंचा था, तब मध्यस्थता समझौते के तहत अपीलार्थी द्वारा उठाई

गई दलीलों के संबंध में अपीलार्थी के पक्ष में पूर्ण परिवर्तन हुआ था। उच्च न्यायालय ने तब अन्य तथ्यों पर विचार किया जो उसे प्रासंगिक लगे। इसमें कहा गया है कि दोनों पक्षों के बीच काफी मतभेद थे और उनके बीच मिलने का कोई आधार नहीं था। अपीलार्थी की याचिका कि मध्यस्थता का सहारा लेने से विवाद के शीघ्र निपटारे में मदद मिल सकती है, उच्च न्यायालय में अपील नहीं की, और इसलिए, कुल मिलाकर, उच्च न्यायालय ने सोचा कि निचली अदालत द्वारा मुकदमे की कार्यवाही पर रोक लगाने से इनकार करने के आदेश की पुष्टि की जाएगी। अपीलार्थी का तर्क है कि मुकदमे पर रोक लगाने से इनकार करने में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारण आश्वस्त करने वाले नहीं हैं और उस ओर से उच्च न्यायालय में निहित विवेकाधिकार का ठीक से या विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग नहीं किया गया है।

अधिनियम की धारा 34 अदालत को कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाने की शक्ति प्रदान करती है जहां धारा में निर्दिष्ट शर्तों के अधीन मध्यस्थता समझौता होता है। इस प्रकार निर्दिष्ट शर्तें वर्तमान मामले में संतुष्ट हैं, लेकिन धारा स्पष्ट रूप से विचार करती है। कि, भले ही एक मध्यस्थता समझौता है और उसके द्वारा निर्दिष्ट आवश्यक शर्तें संतुष्ट हैं, फिर भी अदालत रोक लगाने से इनकार कर सकती है यदि वह संतुष्ट है कि मध्यस्थता समझौते के अनुसार मामले को क्यों नहीं भेजा जाना चाहिए, इसके पर्याप्त कारण हैं। दूसरे शब्दों में, कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाने की शक्ति विवेकाधीन है, और इसलिए एक मध्यस्थता समझौते का एक पक्ष जिसके खिलाफ कानूनी कार्यवाही शुरू की गई है, मध्यस्थता समझौते पर भरोसा करके अधिकार के मामले के रूप में अदालत में स्थापित कानूनी कार्यवाही पर रोक का दावा नहीं कर सकता है। हालाँकि, यह स्पष्ट है कि न्यायालय में निहित विवेकाधिकार का उचित और न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। आम तौर पर जहां पक्षों के बीच किसी विवाद को उनके बीच समझौते द्वारा घरेलू न्यायाधिकरण के निर्णय के लिए भेजा जाता है, वहां अदालत



पक्षों को अपनी पसंद के न्यायाधिकरण के समक्ष जाने और उनमें से एक द्वारा उसके समक्ष स्थापित कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाने का निर्देश देगी। न्यायिक विवेकाधिकार के अन्य मामलों की तरह, इसलिए धारा 34 द्वारा न्यायालय को दिए गए विवेकाधिकार के मामले में किसी भी ऐसे लचीले नियमों को निर्धारित करना मुश्किल होगा, जो उक्त विवेकाधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करते हैं। वास्तव में कोई भी परीक्षण निर्धारित नहीं किया जा सकता है जिसका स्वचालित अनुप्रयोग न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग की समस्या के समाधान में मदद करेगा। जैसा कि बोवेन, एल. जे. ने गार्डनर बनाम जय ('') में कहा था कि अन्य न्यायिक विवेक की तरह विवेक का प्रयोग भी सामान्य ज्ञान और न्याय के अनुसार किया जाना चाहिए।

धारा 34 के तहत अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए अदालत को केवल इसलिए कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाने से इनकार नहीं करना चाहिए क्योंकि मध्यस्थता समझौते का एक पक्ष मध्यस्थ के सामने जाने के लिए तैयार नहीं है और वास्तव में उक्त समझौते से हटना चाहता है, न ही केवल इस आधार पर रोक लगाने से इनकार किया जा सकता है कि विवाद के पक्षों के बीच संबंध कड़वे हो गए हैं या मध्यस्थ के सामने की कार्यवाही उक्त संबंधों के परिणामस्वरूप अनावश्यक देरी का कारण बन सकती है। केवल इसलिए कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाने से इनकार करना हमेशा उचित या उचित नहीं हो सकता है क्योंकि पक्षों के बीच विवाद को हल करने में कानून के कुछ प्रश्न उत्पन्न होंगे। दूसरी ओर, यदि किसी पक्ष के खिलाफ धोखाधड़ी या बेईमानी का आरोप लगाया जाता है, तो वह उस पक्ष के लिए यह दावा कर सकता है जिसके चरित्र पर महाभियोग चलाया जाता है कि उसे घरेलू न्यायाधिकरण के बजाय अदालत के समक्ष एक खुले मुकदमे में अपने चरित्र को सही साबित करने का अवसर दिया जाना चाहिए, और एक उचित मामले में अदालत उस तथ्य को यह तय करने के लिए प्रासंगिक मान सकती है कि रोक दी जानी चाहिए या नहीं। यदि स्थगन के लिए

आवेदन करने में एक लंबी देरी हुई है और उक्त देरी को यथोचित रूप से इस तथ्य के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है कि पक्षों ने मध्यस्थता समझौते को छोड़ दिया है, तो अदालत विलंब को यह तय करने में एक प्रासंगिक तथ्य के रूप में मान सकती है कि स्थगन दिया जाना चाहिए या नहीं। इसी तरह, यदि विवाद के निर्णय में कानून या संवैधानिक मुद्दों के जटिल प्रश्न उत्पन्न होते हैं और अदालत का समाधान होता है कि ऐसे जटिल मुद्दों का निर्णय मध्यस्थ पर छोड़ना अनुचित होगा, तो वह एक उचित मामले में, उस आधार पर रोक लगाने से इनकार कर सकता है; वास्तव में, ऐसे मामलों में मध्यस्थ अधिनियम की धारा 13 (बी) के तहत अदालत की राय के लिए एक विशेष मामला बता सकता है और बता सकता है। इस प्रकार, यह प्रश्न कि क्या धारा 34 के तहत कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाई जानी चाहिए, प्रत्येक मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अदालत द्वारा हमेशा न्यायिक तरीके से निर्णय लिया जाना चाहिए।

जहां धारा 34 के तहत अदालत में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग निचली अदालत द्वारा किया गया है, वहां अपीलीय अदालत को उक्त विवेकाधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने में देरी करनी चाहिए। अपीलीय स्तर पर उसके समक्ष उठाए गए मामले से निपटने में अपीलीय न्यायालय आम तौर पर केवल इस आधार पर अपील के तहत विवेकाधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा कि यदि उसने मामले पर विचारण स्तर पर विचार किया होता तो वह एक विपरीत निष्कर्ष पर पहुंच जाता। यदि निचली अदालत द्वारा विवेक का उचित और न्यायिक तरीके से प्रयोग किया गया है, तो यह तथ्य कि अपीलीय अदालत ने एक अलग दृष्टिकोण लिया होगा, निचली अदालत के विवेक के प्रयोग में हस्तक्षेप को उचित नहीं ठहरा सकता है। जैसा कि अक्सर कहा जाता है, यह आम तौर पर अपीलीय न्यायालय के लिए खुला नहीं है कि वह विचारण न्यायाधीश के विवेकाधिकार के अपने प्रयोग को प्रतिस्थापित करे; लेकिन यदि अपीलीय

न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय ने अनुचित या मनमौजी तरीके से काम किया है या प्रासंगिक तथ्यों की अनदेखी की है और एक गैर-न्यायिक दृष्टिकोण अपनाया है तो यह निश्चित रूप से अपीलीय न्यायालय के लिए खुला होगा-और कई मामलों में यह उसका कर्तव्य हो सकता है-कि वह विचारण न्यायालय के विवेकाधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करे। इस वर्ग के अंतर्गत आने वाले मामलों में निचली अदालत द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग कानूनी रूप से गलत और अनुचित है और यह निश्चित रूप से न्यायसंगत होगा और अपीलीय अदालत से हस्तक्षेप की मांग करेगा। ये सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित हैं: लेकिन, जैसा कि विस्काउंट साइमन, एल. सी. द्वारा चेरिल्स ओसेनटन एंड कंपनी बनाम जॉनसन (1) में देखा गया है, "नीचे दिए गए न्यायाधीश द्वारा अपने विवेक का प्रयोग करते हुए दिए गए आदेश की अपील की अदालत द्वारा वापसी के बारे में कानून अच्छी तरह से स्थापित है, और कोई भी कठिनाई जो उत्पन्न होती है वह केवल एक व्यक्तिगत मामले में अच्छी तरह से तय किए गए सिद्धांतों के अनुप्रयोग के कारण होती है।"

वर्तमान मामले में एक और तथ्य है जिसे हमारे सामने विवाद के गुण-दोष से निपटने के लिए ध्यान में रखा जाना चाहिए। अपीलार्थी अनुच्छेद 136 के तहत विशेष अनुमति लेकर इस न्यायालय में आया है। दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी उच्च न्यायालय के निर्णय की शुद्धता को चुनौती देने का हकदार नहीं है। यह केवल इस न्यायालय के विवेकाधिकार में है कि उसे उच्च न्यायालय के निर्णय के औचित्य पर विवाद करने की अनुमति दी जा सकती है, और इसलिए यह निर्णय लेने में कि इस न्यायालय को अपील के तहत आदेश में हस्तक्षेप करना चाहिए या नहीं, हमारे लिए इस तथ्य को ध्यान में रखना प्रासंगिक होगा कि अपीलार्थी द्वारा मांगा गया उपाय एक अपील द्वारा है जो जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, एक विवेकाधीन मामला है। इन सिद्धांतों के

आलोक में हमें विचार करना चाहिए कि क्या उच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ अपीलार्थी की शिकायत को बरकरार नहीं रखा जा सकता है या नहीं।

पहला बिंदु जो निर्णय लेने की मांग करता है, वह पक्षों के बीच अनुबंधों के निर्माण से संबंधित है। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि उनके बीच दो अनुबंध निष्पादित किए गए थे, लेकिन उनकी शर्तें काफी हद तक समान हैं और ताकि हम बाद के अनुबंध से निपट सकें जिसे 20 फरवरी, 1953 (पी.2) को निष्पादित किया गया था। इस अनुबंध के तहत प्रतिवादी को डेक्कन हेराल्ड के संपादक के रूप में नियुक्त किया गया था और पैराग्राफ 1 (ए) के तहत उनका वेतन Rs.1500 प्रति माह तय किया गया था। पैराग्राफ 1 (बी) और (सी) उन अन्य सुविधाओं से संबंधित है जिनके लिए प्रतिवादी हकदार था: पैराग्राफ 1 के खंड (डी) में प्रावधान है कि जब समाचार पत्र वार्षिक खातों में लाभ दिखाता है तो संपादक इसके 1/10 वें हिस्से का हकदार होगा; इस खंड पर ही वर्तमान कार्यवाही में प्रतिवादी का दावा आधारित है। जिन शर्तों पर प्रत्यर्थी को अपीलार्थी की सेवा में रहना था, वे पैराग्राफ 2 (ए) में निर्दिष्ट हैं और (बी) पैराग्राफ में अनुबंध के नवीनीकरण के लिए पांच साल की और अवधि का प्रावधान है यदि यह पाया जाता है कि ऐसा नवीनीकरण पक्षों के आपसी लाभ के लिए है। इस पैराग्राफ में यह भी प्रावधान है कि अपने रोजगार के जारी रहने के दौरान प्रत्यर्थी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपीलार्थी के अलावा किसी अन्य समाचार पत्र व्यवसाय या अपीलार्थी के साथ प्रतिस्पर्धा में किसी अन्य पत्रकारिता गतिविधियों में रुचि नहीं रखेगा। इसमें यह भी निर्धारित किया गया है कि यदि अनुबंध निर्धारित किया जाता है तो प्रत्यर्थी उसके बाद तीन साल की अवधि के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसी तरह के किसी भी समाचार पत्र व्यवसाय में रुचि नहीं रखेगा जैसा कि मैसूर राज्य के भीतर अपीलार्थी द्वारा किया जाता है। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि यह पैराग्राफ सामान्य रूप से पैराग्राफ 1 और विशेष रूप से उक्त पैराग्राफ के खंड (डी) द्वारा प्रत्यर्थी को प्रदान

किए गए लाभ के लिए विचार के रूप में प्रत्यर्थी पर लगाए गए दायित्व को दर्शाता है। पैराग्राफ 4 में एक मध्यस्थता समझौता है। इसमें प्रावधान है कि यदि अनुबंध की व्याख्या या अनुप्रयोग में पक्षों के बीच कोई मतभेद उत्पन्न होता है तो उसे मध्यस्थता के लिए भेजा जाएगा। मध्यस्थ को दोनों पक्षों द्वारा नामित किया जा सकता है लेकिन यदि वे एक ही व्यक्ति को चुनने में विफल रहते हैं तो प्रत्येक पक्ष एक मध्यस्थ का चयन करेगा और दोनों पैनल को पूरा करने के लिए एक अन्य व्यक्ति का चुनाव करेंगे। उनका पुरस्कार अंतिम होगा और दोनों पक्षों के लिए बाध्यकारी होगा।

उच्च न्यायालय ने माना है कि वर्तमान मुकदमा मध्यस्थता समझौते के बाहर है क्योंकि कोई भी पक्ष विवाद के निर्णय में अनुबंध की शर्तों की प्रयोज्यता पर विवाद नहीं करता है। उच्च न्यायालय ने सोचा कि इस संदर्भ में अनुबंध के आवेदन का अर्थ अनुबंध की प्रयोज्यता के बारे में विवाद है, और चूंकि अनुबंध की प्रयोज्यता पर कोई सवाल नहीं था और अनुबंध की व्याख्या के बारे में कोई विवाद उत्पन्न नहीं हुआ था, इसलिए उच्च न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 4 वर्तमान मुकदमे पर लागू नहीं था। अपीलार्थी की ओर से श्री पुरुषोत्तम का तर्क है कि उच्च न्यायालय द्वारा "आवेदन" शब्द पर किया गया निर्माण गलत है। उनके अनुसार, अनुबंध के आवेदन के संबंध में किसी भी मतभेद को अनुबंध से बाहर निकलने या इसकी शर्तों को प्रभावी बनाने के संदर्भ में होना चाहिए। हमारी राय में, यह विवाद अच्छी तरह से स्थापित है। 'अनुबंध की व्याख्या या अनुप्रयोग' शब्दों का उपयोग अक्सर मध्यस्थता समझौतों में किया जाता है और वे आम तौर पर अनुबंध की प्रासंगिक शर्तों के निर्माण के साथ-साथ उनके प्रभाव के संबंध में पक्षों के बीच विवादों को शामिल करते हैं, और जब तक कि संदर्भ एक विपरीत निर्माण को मजबूर नहीं करता है, अनुबंध के काम करने के संबंध में विवाद आम तौर पर विचाराधीन खंड के भीतर आता है। यह समझना आसान नहीं है कि उच्च न्यायालय के अनुसार किस तरह के विवाद ने पैराग्राफ 4 को आकर्षित किया होगा जब

यह अनुबंध के आवेदन में मतभेद को संदर्भित करता है। चूँकि दोनों पक्षों ने अनुबंध पर हस्ताक्षर किए हैं, इसलिए उस रूप में इसकी प्रयोज्यता के बारे में सवाल शायद ही उठ सकता है। हालाँकि, मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं और वास्तव में उस तरीके के बारे में उत्पन्न हो सकते हैं जिसमें अनुबंध को तैयार किया जाना है और उसे प्रभावी बनाया जाना है, और यह ठीक ऐसे मतभेद हैं जो मध्यस्थता समझौता द्वारा कवर किए गए हैं, तदनुसार यह माना जाएगा कि उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचने में गलती कर रहा था कि पक्षों के बीच वर्तमान विवाद अनुबंध के पैराग्राफ 4 के दायरे से बाहर था।

यदि उच्च न्यायालय ने केवल इस आधार पर वर्तमान कार्यवाही पर रोक लगाने से इनकार कर दिया होता तो अपीलार्थी निस्संदेह सफल होता। लेकिन उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय को न केवल और न ही मुख्य रूप से अनुबंध के निर्माण पर आधारित किया है। निर्णय के कार्यकाल से पता चलता है कि उच्च न्यायालय ने अन्य प्रासंगिक तथ्यों पर विचार किया जिन पर उसका ध्यान आमंत्रित किया गया था और विचारण न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए भौतिक निष्कर्षों पर विचार किया और हालाँकि यह विचारण न्यायाधीश के कुछ निष्कर्षों से अलग था, कुल मिलाकर इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई कठिनाई महसूस नहीं की कि धारा 34 के तहत विचारण न्यायालय के विवेकाधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं था। यही कारण है कि यद्यपि अपीलार्थी मध्यस्थता समझौते के निर्माण के प्रश्न पर हमारे समक्ष सफल हुआ है, उन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए जो हम आम तौर पर अनुच्छेद 136 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग पर लगाते हैं, फिर भी उसे हमें संतुष्ट करना चाहिए कि हम नीचे दिए गए दोनों न्यायालयों द्वारा विवेक के समवर्ती प्रयोग में हस्तक्षेप करना उचित होगा, और यह अनिवार्य रूप से उन अन्य प्रासंगिक तथ्यों पर निर्भर करेगा जिन्हें दोनों न्यायालयों ने संदर्भित किया है, और जिन पर दोनों ने अलग-अलग तरीकों से भरोसा किया है।

फिर उस मामले की व्यापक विशेषताएं क्या हैं जिन पर क्रमशः विचारण न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने भरोसा किया है? यह स्पष्ट है कि वर्तमान विवाद मध्यस्थता खंड वाले सामान्य वाणिज्यिक लेनदेन का परिणाम नहीं है। विचाराधीन अनुबंध एक पत्रकार और उसके नियोक्ता के बीच है जिसके द्वारा पत्रकार का पारिश्रमिक कुछ असामान्य तरीके से तय किया गया है, जिसमें उसे लाभ में एक निर्दिष्ट प्रतिशत दिया गया है जो डेक्कन हेराल्ड साल दर साल कमाता है। प्रत्यर्थी के अनुसार वह तब आश्चर्यचकित हुआ जब पत्र के महाप्रबंधक ने उसे सूचित किया कि अपीलार्थी की कई गतिविधियों में किए गए कुल व्यय का 75 प्रतिशत डेक्कन हेराल्ड से लिया जा रहा है, और यह कि पूंजी देनदारियां उसी अनुपात में ली गई हैं, उसने सोचा कि अपीलार्थी द्वारा अपनाई गई लेखांकन की यह प्रणाली उसके अनुबंध के भौतिक प्रावधानों के प्रतिकूल थी। वास्तव में यह मामला यह है कि जब उन्हें इस प्रणाली के बारे में पता चला तो उन्होंने निदेशक श्री वेंकटस्वामी का विरोध किया, जो अपीलार्थी के मामलों में सक्रिय भाग ले रहे हैं और श्री वेंकटस्वामी ने उन्हें आश्वासन दिया कि 1955 की शुरुआत से ही खातों को अलग से रखा जा रहा था। 24 मई, 1955 (डी1) के प्रत्यर्थी के पत्र के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि जनरल मैनेजर से प्रत्यर्थी द्वारा प्राप्त जानकारी से उनका मोहभंग हो गया और यह वर्तमान विवाद की शुरुआत प्रतीत होती है। 18 फरवरी, 1956 को प्रतिवादी ने मध्यस्थता समझौते का आह्वान किया और श्री वेंकटस्वामी से कहा कि श्री बेहराम डॉक्टर मध्यस्थ के रूप में काम करने और अपना पुरस्कार देने के लिए सहमत हो गए हैं। श्री वेंकटस्वामी, जिन्हें प्रत्यर्थी द्वारा प्रबंध निदेशक के रूप में संबोधित किया गया था, ने 5 मार्च 1956 के अपने जवाब में उन्हें बताया कि वह प्रबंध निदेशक नहीं थे और उन्होंने कहा कि उनके विचार में प्रत्यर्थी अनुबंध के खंड 4 को लागू करने के लिए तैयार नहीं थे क्योंकि उन्हें पता था कि खंड 1 (डी) के तहत प्रत्यर्थी को कोई धन देय नहीं था। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि

मध्यस्थता के लिए प्रत्यर्थी के अनुरोध पर श्री वेंकटस्वामी की तत्काल प्रतिक्रिया यह थी कि प्रत्यर्थी मध्यस्थता खंड (डी 3) का आह्वान नहीं कर सकता था। यही कारण है कि 23 अप्रैल, 1956 को श्री वेंकटस्वामी ने इस कथन को यह कहते हुए स्पष्ट करने का प्रयास किया कि उनका केवल यह सुझाव देना था कि मध्यस्थता समझौते को लागू करने का कोई अवसर उत्पन्न नहीं हुआ था। हालाँकि यह एक असंतोषजनक व्याख्या प्रतीत होती है। फिर भी, श्री वेंकटस्वामी श्री बेहराम डॉक्टर से मिलने के लिए सहमत हो गए और इसलिए 9 मार्च, 1956 को प्रतिवादी ने श्री वेंकटस्वामी को श्री बेहराम, डॉक्टर का पता दिया और उन्हें उनसे मिलने के लिए कहा (डी. 5)। उन्होंने श्री बेहराम डॉक्टर को तदनुसार सूचित किया (डी. 6)। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में श्री बेहराम डॉक्टर 9 मई, 1956 को प्रतिवादी और श्री वेंकटस्वामी दोनों से मिले। इस बैठक की कार्यवाही जो श्री बेहराम डॉक्टर द्वारा रखी गई है और जिसकी प्रतियां उनके द्वारा दोनों पक्षों को प्रदान की गई हैं, इंगित करती हैं कि श्री बेहराम डॉक्टर ने पक्षों के बीच मध्यस्थता करने का प्रयास किया और संभवतः पक्ष विवाद को हल करने के लिए श्री बेहराम डॉक्टर की मध्यस्थता को सुरक्षित करने के लिए सहमत थे। हमें यह जोड़ना चाहिए कि अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत उक्त कार्यवाही की प्रति में एक बयान है कि श्री वेंकटस्वामी ने शुरू में श्री बेहराम डॉक्टर से कहा था कि वे एक अनौपचारिक यात्रा पर आए थे और अन्य निदेशकों की सहमति के बिना बोल रहे थे। हालाँकि, यह कथन श्री बेहराम डॉक्टर द्वारा प्रतिवादी को प्रदान की गई प्रति में नहीं पाया जाता है, प्रथम दृष्टया यह समझना आसान नहीं है कि श्री बेहराम डॉक्टर को उनके द्वारा प्रतिवादी को प्रदान की गई प्रति में इस भौतिक कथन को क्यों छोड़ना चाहिए था। हालाँकि, यह एक ऐसा मामला है जिसे हम वर्तमान अपील में प्रस्तावित नहीं करते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यद्यपि श्री बेहराम डॉक्टर को मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया गया था और उनके लिए लिखित रूप में कोई संदर्भ नहीं दिया गया था। श्री बेहराम डॉक्टर की सहायता से



विवाद को निपटाने के लिए पक्षों द्वारा प्रयास किया गया था, और यह प्रयास विफल रहा। अभिलेख पर आए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं हो सकता है कि अपीलार्थी श्री बेहराम डॉक्टर के समक्ष दोनों पक्षों द्वारा मूल रूप से अपनाई गई तर्ज पर मामले को आगे बढ़ाने के लिए बहुत उत्सुक नहीं था।

ऐसा भी प्रतीत होता है कि कुछ वर्षों से डेक्कन हेराल्ड के खातों को अलग से नहीं रखा गया था जैसा कि उन्हें प्रतिवादी के मामले के अनुसार होना चाहिए था। प्रत्यर्थी का आरोप है कि उन्हें पूरे दस वर्षों में अलग-अलग नहीं रखा गया है, लेकिन यह एक ऐसा मामला है जिसकी जांच की जानी बाकी है। यदि खातों को अलग से नहीं रखा जाता है तो व्यय आवंटित करने का प्रश्न अनिवार्य रूप से उत्पन्न होगा और उस संबंध में कुछ तदर्थ सिद्धांत अपनाने के बाद इसका निर्णय लिया जा सकता है। अपीलार्थी द्वारा एक सीमा याचिका का भी संकेत दिया गया है और यह सुझाव दिया गया है कि पहला अनुबंध दूसरे में विलय होने के बाद केवल बाद के अनुबंध के तहत है कि प्रतिवादी के पास कार्रवाई का कारण हो सकता है। इस प्रकार एक साथ विचार किए गए दो अनुबंधों के प्रभाव को सीमा के प्रश्न से निपटने में निर्णय लेना पड़ सकता है। यह भी सुझाव दिया गया है कि प्रत्यर्थी को पता था कि खातों को साल-दर-साल कैसे रखा जाता था और सार में वह खातों को रखने में अपनाई गई विधि से सहमत माना जा सकता है। यदि यह मुद्दा अपीलार्थी द्वारा उठाया जाता है तो इसमें प्रत्यर्थी के आचरण के उसके वर्तमान दावे पर प्रभाव के बारे में प्रश्न का निर्णय शामिल हो सकता है। अपीलार्थी ने यह भी सुझाव दिया है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को ब्लैकमेल करने का रवैया अपनाया है और प्रत्यर्थी इसे अपने चरित्र पर आक्षेप के रूप में मानता है। पक्षों के बीच संबंध बहुत कड़वे रहे हैं और प्रत्यर्थी को आशंका है कि अपीलकर्ता, एक शक्तिशाली कंपनी होने के नाते, मध्यस्थों के समक्ष कार्यवाही को आगे बढ़ाते हुए प्रत्यर्थी के दावे में देरी कर सकता है और उसे विफल करने की कोशिश कर सकता है।

अब यह असंभव प्रतीत होता है कि पक्षकार एक मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए सहमत होंगे, और इसलिए यदि मामला घरेलू न्यायाधिकरण के समक्ष जाता है तो दोनों पक्षों द्वारा नियुक्त दो मध्यस्थों को क्रमशः घरेलू न्यायाधिकरण के गठन को पूरा करने के लिए तीसरे को नामित करना पड़ सकता है, और यह कि सहायता आसानी से गतिरोध का कारण बन सकती है। निचली अदालत में इस दुर्भाग्यपूर्ण विवाद को निपटाने के प्रयास किए गए लेकिन वे विफल रहे और प्रतिवादी की शिकायत यह है कि अपीलार्थी ने एक असहयोगी और असहयोगी रवैया अपनाया। यह काफी स्पष्ट प्रतीत होता है कि जब पक्षकारों ने वर्तमान अनुबंध में प्रवेश किया और इस बात पर सहमत हुए कि अनुबंध की व्याख्या और अनुप्रयोग के संबंध में उनके बीच मतभेदों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया जाना चाहिए, तो उन्होंने बाद में उत्पन्न होने वाली जटिलताओं का अनुमान नहीं लगाया। यही कारण है कि विचाराधीन अनुबंध में एक मध्यस्थता समझौता पेश किया गया होगा। इन सभी तथ्यों पर दोनों न्यायालयों द्वारा विचार किया गया है, और यद्यपि यह सच है कि इन तथ्यों के संबंध में उनके दृष्टिकोण और अंतिम निर्णयों में दोनों न्यायालय भौतिक विवरणों में भिन्न हैं, परिणाम में वे इस निष्कर्ष पर सहमत हुए हैं कि उनमें निहित विवेकाधिकार का उपयोग स्थगन नहीं देने में किया जाना चाहिए जैसा कि अपीलार्थी द्वारा दावा किया गया है। इन परिस्थितियों में हमें नहीं लगता कि हम नीचे दिए गए न्यायालयों के लिए अपने विवेकाधिकार को प्रतिस्थापित करने में उचित होंगे। यह हो सकता है कि यदि हम धारा 34 के तहत अपीलार्थी के आवेदन का परीक्षण कर रहे थे तो हम एक अलग निष्कर्ष पर आ सकते थे; और यह भी कि हम निचली अदालत के आदेश की पुष्टि करने में संकोच कर सकते थे यदि हम मामले को पहली अपील के अदालत के रूप में देख रहे थे, यह हो सकता है कि यदि हम धारा 34 के तहत अपीलार्थी के आवेदन का परीक्षण कर रहे होते तो हम एक अलग निष्कर्ष पर पहुंच सकते थे और यह भी कि हम निचली अदालत के आदेश की

पुष्टि करने में संकोच कर सकते थे यदि हम मामले को पहली अपील की अदालत के रूप में देख रहे होते; लेकिन मामला अब अनुच्छेद 136 के तहत हमारे पास आ गया है और इसलिए हम नीचे की अदालतों द्वारा विवेकाधिकार के समवर्ती प्रयोग में केवल तभी हस्तक्षेप कर सकते हैं जब हम महसूस करें कि विवेकाधिकार का उक्त प्रयोग स्पष्ट रूप से और अनुचित, मनमौजी या विकृत है और यह न्याय के उद्देश्यों को विफल कर सकता है। इस मामले की सभी परिस्थितियों और तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हम यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि अपीलार्थी द्वारा हमारे हस्तक्षेप का मामला बनाया गया है। यही कारण है कि हम इस अपील को खारिज करते हैं लेकिन पूरे खर्च के बारे में कोई आदेश नहीं देते हैं। याचिका खारिज कर दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक सुनील कुमार किया गया है ।

अस्वीकरण- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अँग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अँग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।